International Journal of Enhanced Research in Management & Computer Applications
ISSN: 2319-7471, Vol. 6 Issue 10, October-2017, Impact Factor: 3.578

# मनुष्य के सम्यक् विकास में नैतिक मूल्यों का महत्व

**पूनम रानी**
शोधार्थी, हिंदी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

## सारांश

वर्तमान समय में शिक्षा में कई नये प्रयोग हुए हैं और आमूल-चूल परिवर्तन भी। फिर भी शिक्षा शब्द का अर्थ अपनी गरिमा के अनुरूप आज भी अपनी महत्ता को परिभाषित कर रहा है। शिक्षा मनुष्य के सम्यक् विकास के लिए उसके विभिन्न ज्ञान तंतुओ को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया है। इसके द्वारा लोगों में आत्मसात करने, ग्रहण करने, रचनात्मक कार्य करने, दूसरों की सहायता करने और राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों में पूर्ण सहयोग देने की भावना का विकास होता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को परिपक्व बनाना है । समुचित शिक्षा से मानव भी संस्कारवान बन चारों पर्वों में निष्णात बन जाता है। और उसका नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर उच्चता को प्राप्त हो जाता है ।

## परिचय

नीति शास्त्र की उक्ति है-

*"ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः"*

अर्थात् ज्ञान से हीन मनुष्य पशु के तुल्य है। ज्ञान की प्राप्ति शिक्षा या विद्या से होती है। दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। 'शिक्ष' धातु से शिक्षा शब्द बना है, जिसका अर्थ है-विद्या ग्रहण करना। विद्या शब्द 'विद' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-ज्ञान पाना। ऋषियों की दृष्टि में विद्या वही है जो हमें अज्ञान के बंधन से मुक्त कर दे-'सा विद्या सा विमुक्तये' । भगवान श्री कृष्ण ने गीता में 'अध्यात्म विद्यानाम्' कहकर इसी सिद्धांत का समर्थन किया है।

शिक्षा की प्रक्रिया युग सापेक्ष होती है। युग की गति और उसके नए-नए परिवर्तनों के आधार पर प्रत्येक युग में शिक्षा की परिभाषा और उद्देश्य के साथ ही उसका स्वरूप भी बदल जाता है। यह मानव इतिहास की सच्चाई है। मानव के विकास के लिए खुलते नित-नये आयाम शिक्षा और शिक्षाविदों के लिए चुनौती का कार्य करते है जिसके अनुरूप ही शिक्षा की नयी परिवर्तित-परिवर्धित रूप-रेखा की आवश्यकता होती है। शिक्षा की एक बहुत बड़ी भूमिका यह भी है कि वह अपनी संस्कृति, धर्म तथा अपने इतिहास को अक्षुण्ण बनाए रखें, जिससे की राष्ट्र का गौरवशाली अतीत भावी पीढ़ी के समक्ष द्योतित हो सके और युवा पीढ़ी अपने अतीत से कटकर न रह जाए।

**शिक्षा शब्द का मूल**

शिक्षा शब्द का मूल ‘‘शिक्ष विद्योपदेन’ धातु है। तदनुसार ‘शिक्षते उपादीयते विद्या यया सा शिक्षा।’ अर्थात जिसके द्वारा विद्या का उपादान किया जाये वह शिक्षा है। शिक्षा से जिस विद्या की प्राप्ति की जाती है उसका स्वरुप विवेचन करते हुए विद्वानों ने कहा है -

**‘विद्यास्ति ज्ञानविज्ञानदर्शनः संस्कृयात्मनि’**

अर्थात शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान विज्ञान एवं दर्शन से आत्मा में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना शिक्षा है। दूसरे शब्दों में आत्मा को संस्कृत करना ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है। आर्य शिक्षा ही सभी संस्कारों में मुख्यतम है। शिक्षा रूपी संस्कार मानव के शरीर, मन, बुध्दि और आत्मा इन चारों पर्वों को निर्दोष, गुणवान, इतर विलक्षण, विकसित, नीरोग एवं पूर्ण बनाता है, इन चारों पर्वों की समष्टि ही मानव है। मानव का पूर्ण विकास ही तो शिक्षा का मूल उद्देश्य है। वेद की दृष्टि में विश्व का कोई भी असंस्कृत पदार्थ किसी भी कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होता, अतः उसे कार्यान्तर उपयोग के लिए संस्कृत बनाना अनिवार्य है। कच्चा घड़ा असंस्कृत होकर जल धारण करने योग्य नहीं होता अतः उसे अग्नि में संस्कृत बनाया जाता है। ताप संस्कार से उसमें जल धारण की योग्यता आ जाती है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली के आदर्श वाक्य के रूप में वेद का अनुशासन है- ‘विशेष ज्ञानी-ज्ञानामृत

में प्रतिष्ठित व्यक्ति अज्ञानियों में बैठकर उन्हें ज्ञान प्रदान करें'। अर्थात गुरु या शिक्षक अपने प्राप्त ज्ञान के माध्यम से अन्य को शिक्षित करें।

वैदिक शिक्षा प्रणाली का मानना है कि समस्त ज्ञान मनुष्य के अंतर में स्थित है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार आत्मा ज्ञानरूप है ज्ञान आत्मा का प्रकाश है । मनुष्य को बाहर से ज्ञान प्राप्त नहीं होता प्रत्युत आत्मा के अनावरण से ही ज्ञान का प्रकटीकरण होता है। श्री अरविन्द के शब्दों में "मस्तिष्क को ऐसा कुछ नहीं सिखाया जा सकता जो जीव की आत्मा में सुप्त ज्ञान के रूप में पहले से ही गुप्त न हो।" स्वामी विवेकानंद ने भी इसी बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है-"मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभाव सिद्ध है कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता सब अंदर ही है, हम जो कहते हैं कि मनुष्य 'जानता' है। यथार्थ में मानव शास्त्रसंगत भाषा में हमें कहना चाहिए की वह अविष्कार करता है, अनावृत ज्ञान को प्रकट करता है।

अतः समस्त ज्ञान चाहे वह भौतिक हो, नैतिक हो अथवा आध्यात्मिक मनुष्य की आत्मा में है। बहुधा वह प्रकाशित न होकर ढका रहता है और जब आवरण धीरे-धीरे हट जाता है तब हम कहते हैं कि हम सीख रहे हैं, जैसे-जैसे इस अनावरण की क्रिया बढ़ती जाती है हमारे ज्ञान में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य नए सिरे से कुछ निर्माण करना नहीं अपितु मनुष्य में पहले से ही सुप्त शक्तियों का अनावरण और उसका विकास करना है।

सच्चे शिक्षण का पहला सिद्धांत है कि कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता। अध्यापक कोई निर्देशक या काम लेने वाला स्वामी नहीं है, वह एक सहायक एवं मार्ग प्रदर्शक है। उसका काम सुझाव देना है, थोपना नही। वह सचमुच विद्यार्थियो के मानस को प्रशिक्षित नहीं करता। वह उसे केवल यह बतलाता है कि ज्ञान के उपकरणों को कैसे पूर्ण बनाया जाय और वह उसे इस कार्य में सहायता देता और प्रोत्साहित करता है। वह उसे ज्ञान नहीं देता अपितु उसे यह बताता है कि अपने लिए ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाए।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को ज्ञान का पर्याय न मानकर जीवन निर्माण, मनुष्यत्व के विकास एवं चरित्र के गठन का साधन माना है। उनका दृष्टिकोण है- 'शिक्षा उस जानकारी के समुदाय

का नाम नहीं, जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दिया गया हो और वहाँ पड़े-पड़े तुम्हारे सारे जीवनभर बिना पचाये सड़ रहा है। हमें तो भावों या विचारों को ऐसे आत्मसात् कर लेना चाहिए, जिससे जीवन निर्माण, मनुष्यत्व आये और चरित्र का गठन हो। यदि शिक्षा और जानकारी एक ही वस्तु होती तो पुस्तकालय संसार के सबसे बड़े संत और विश्वकोष ऋषि बन जाते।' शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था- 'सभी शिक्षाओं का अभ्यासों का उद्देश्य मनुष्य निर्माण ही है। समस्त अभ्यासों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना है। जिस अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और आविष्कार संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम शिक्षा है।

## वर्तमान शिक्षा में नैतिक मूल्य

वर्तमान शिक्षा में नैतिक मूल्यों का महती आवश्यकता है। वैदिक शिक्षा प्रणाली का मानना है कि समस्त ज्ञान मनुष्य के अंतर में स्थित है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार आत्मा ज्ञान रूप है ज्ञान आत्मा का प्रकाश है। मनुष्य को बाहर से ज्ञान प्राप्त नहीं होता प्रत्युत आत्मा के अनावरण से ही ज्ञान का प्रकटीकरण होता है। श्री अरविन्द के शब्दों में ''मस्तिष्क को ऐसा कुछ नहीं सिखाया जा सकता जो जीव की आत्मा में सुप्त ज्ञान के रूप में पहले से ही गुप्त न हो।' स्वामी विवेकानंद ने भी इसी बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है-''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभाव सिद्ध है कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता सब अंदर ही है हम जो कहते है कि मनुष्य 'जानता' है। यथार्थ में मानव शास्त्र संगत भाषा में हमें कहना चाहिए की वह अविष्कार करता है, अनावृत ज्ञान को प्रकट करता है।

अतः समस्त ज्ञान चाहे वह भौतिक हो, नैतिक हो अथवा आध्यात्मिक मनुष्य की आत्मा में है। बहुधा वह प्रकाशित न होकर ढका रहता है और जब आवरण धीरे-धीरे हट जाता है तब हम कहते है कि हम सीख रहे है जैसे-जैसे इस अनावरण की क्रिया बढ़ती जाती है हमारे ज्ञान में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य नए सिरे से कुछ निर्माण करना नहीं अपितु मनुष्य में पहले से ही सुप्त शक्तियों का अनावरण और उसका विकास करना है।

चारित्रिक एवं नैतिक शिक्षा पर बल देते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा था – 'शिक्षा मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता का विकास है वह शिक्षा जो जनसमुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बना सकती, जो उनकी चारित्रिक शक्ति का विकास नहीं कर सकती, जो उनके मन में परहित भावना और सिंह के समान साहस पैदा नहीं कर सकती , क्या उसे भी हम शिक्षा नाम दे सकते है?' शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने

कहा था -'सभी शिक्षाओं का, अभ्यासों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना है। जिस अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रवाह और आविष्कार संयमित होकर फलदायी बन सकें।'

यदि शिक्षा व्यवस्था में सचमुच सुधार लाना हो तो शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश जरूरी है क्योंकि कोई कार्य यदि सुस्पष्ट नीति के बिना किया जाए तो वह सफल नहीं हो सकता । नीति से ही नैतिक शब्द बना है जिसका अर्थ है सोच-समझकर बनाए गए नियम या सिद्घांत । लेकिन आज की शिक्षा में नैतिक मूल्यों का कोई समावेश नहीं है क्योंकि वह दिशाहीन है ।

## निष्कर्ष

शिक्षा से व्यक्ति समाज में आदरणीय बनता है। समाज और देश के लिए इस ज्ञान का महत्व भी है क्योंकि शिक्षित राष्ट्र ही अपने भविष्य को सँवारने में सक्षम हो सकता है । आज कोई भी राष्ट्र विज्ञान और तकनीक की महत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकता , जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका उपयोग है । वैज्ञानिक विधि का प्रयोग कृषि और पशुपालन के क्षेत्र में करके ही हमारे देश में हरित क्रांति और श्वेत क्रांति लाई जा सकी है। अत: वस्तुपरक शिक्षा हर क्षेत्र में उपयोगी है। परंतु जीवन में केवल पदार्थ ही महत्वपूर्ण नहीं हैं। उच्च शिक्षा का संबंध जीवन में गुणात्मक मूल्यों के विस्तार से है जिससे सभ्यता के विकास क्रम में अर्जित मानवता के दीर्घकालिक अनुभवों को आत्मलब्धि की दिशा में समाजीकरण के साथ अग्रसारित किया जा सके। ऐसे अनुभवों के समुच्चय ही कालान्तर में मूल्य बनते हैं जिन्हें अपनाने की परम्परा ही संक्षेप में संस्कृति कहलाती है और इस संस्कृति के निर्माण में एक शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका है।

## सन्दर्भ सूची

[1]. कल्याण 'शिक्षांक' सम्पादक- राधेश्याम खेमका, गीताप्रेस, गोरखपुर, वर्ष 1988 शिक्षा के भारतीय मनोवैज्ञानिक आधार - श्री लज्जाराम जी तोमर - पृष्ठ 236

[2]. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

[3]. विवेकानन्द साहित्य (चतुर्थ खण्ड) पृष्ठ-172

[4]. उच्च शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन पुस्तक से, बसंत प्रताप सिंह (प्रमुख सचिव) उच्च शिक्षा विभाग, पृष्ठ-5.